Historicity Research Journal
Volume 1 | Issue 7 | March 2015 ISSN:- 2393-8900

Research Article

‘‘सल्तनत काल में राजत्व व्यवस्था’’

रामबाबू मेहर

सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शा. गृहविज्ञान स्नातकोत्तर महा. होशगाबाद (म. प्र.)

सारांश : राजत्व का साधारण अर्थ है शासन के वे मूलभूत सिद्वान्त, जिनमें रियाया के प्रति संपूर्ण जबाबदेही परिलक्षित होती हो, के साथ शासन चलाने के तरीकों से है तथा यह तरीका शासन के सभी भागों में सर्वथादिखाई पड़ता हो।सल्तनत काल में सुल्तानों के कार्य कार्यप्रणाली तथा नवीन प्रयोगों में राजत्व के दर्शन होते हैं। यथा–सुल्तान के प्रशासनिक कार्यो के साथ ही आर्थिक व्यवस्था व उसका नियमन जिसमें नये तत्वों के समायोजन के साथ जनकल्याण निहित हो, सामाजिक कार्य तथा उसकी जनता के प्रति जवावदेही, धार्मिक कार्य जिसमें धर्म रहित या धर्मातीत न्याय वयवस्था भी सम्मिलित है और उसकी न्यायिक व्यवस्था, निर्णय के आधार तथा राज्य के आवश्यक तत्वों में सुल्तान का व्यक्तित्व। शासन व राज्य के प्रति रियाया के सैनिक कर्त्तव्य।

शब्द संकेतः– राजत्व, सुल्तान, धर्म, न्याय, प्रशासन, रियाया(प्रजा)।

परिचय

मुस्लिम प्रशासनिक व्यवस्था में सुल्तान का पद सर्वशक्तिमान माना गया था लेकिन धार्मिक तथा आध्यात्मिक जगत में वे खलीफा से निरंतर स्वीकृति लेते रहे। जब तक सुल्तान खलीफा के प्रति सम्मान प्रकट करते रहे तब तक वे दीनी–दुनिया (मुस्लिम धर्मिक समूह)के मसीहा व धर्मध्वजा वाहक बने रहे। परंतु जैसे ही सुल्तानों ने स्वयं को रियाया का नेता घोषित किया, वे समस्त प्रजा के शासक भी हो गये। ऐसी स्थिति में कई बार उन्हे स्वधर्म व विधर्मियों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा।चूकिं सुल्तान का आदेश ही कानून होता था और वह आदेश इस्लामी जगत, स्वहित व कभी–कभी मुस्लिम धर्मिक नेताओं के अनुसार प्रेरित होता था अतः प्रत्येक काल में राजत्व का स्वरूप सुल्तानों तथा उनकी कार्यप्रणाली के अनुसार विभिन्न रूपों में बदलता रहा।

प्रस्तावना

प्रारंभिक मुस्लिम शासकों में कुतुबुद्दीन ऐबक ज्यादा दिन तक सुल्तान पद पर नहीं रह सका ओर शीघ्र ही गुलाम इल्तुतमिश ने शासन की बागडौर संभाली , चूंकि इल्तुतमिश भी कभी गुलाम था और तुर्क सरदारों के व्यवहारों से भलीभॉंति परिचित था, इसलिए सुल्तान पद पर बैठने के बाद उसकी महती आवश्यकता थी कि वह उद्दण्ड एवं अनुशासनहीन सरदारों को एक शासन के नीचे लाये। ऐसा उसने किया भी, क्योंकि जो बचे हुए मुइज्जी और कुतुबी सरदार थे उन्होनें या तो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली या भाग गये।

प्रशासनिक क्षेत्र में समयाभाव के कारण जो कार्य ऐबक नहीं कर पाया था उसे इल्तुतमिश ने प्रारंभ किया और बलवन ने उसे पूरा किया। इल्तुतमिश ने नवीन तुर्की राज्य को संबल प्रदान किया और प्रशासन में मध्य एशियाई परंपराओं को भारतीय परिप्रक्ष्य में प्रस्तुत किया। वास्तव में अभी राजधनी के अतिरिक्त तुर्क सत्ता कमजोर थी जिसे मजबूत प्रशासनिक संस्थाओं की स्थापना से ही स्थायित्व दिया जा सकता था। अतः उसने मजबूत इक्ता व्यवस्था लागू की। उसने तुर्क सरदारों को इक्तायें बांटकर एक बड़ी कमी को पूरा किया और एक लम्बी श्रंखला

तैयार कर दी जिस पर नवीन तुर्की राज्य खड़ा हो सकता था।बलवन ने सुल्तान बनने तक कई उतार–चढ़ाव देखे थे फलतः वह पुरानी परम्पराओं को, जो मध्य एशिया की थीं, और जिनका विकास भारतीय–मुस्लिम क्षेत्रों में हुआ था, समूल नष्ट करने में सफल रहा।

बलवन ने सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा और सम्मान को धूल में पड़ा पाया था। तत्पश्चात् वह सुल्तान के पद की गरिमा को इतने ऊपर ले गया कि बड़े से बड़े अमीर (जो कि एक पद था और जिस पर कभी वह भी रह चुका था) जो शुरूआत में स्वयं को सुल्तान के समकक्ष समझते थे, वे बलवन के करीब भी नहीं पहुंच पाये। वह उसके पुत्रों को शासन के मामलों पर सलाह देते हुए कहता है कि शासन को समर्थ लोगों के अत्याचार से दुर्बल व्यक्तियों की रक्षा करना चाहिए, संतुलित आचार शासन का आदर्शवादी वाक्य होना चाहिए, शासन के आदेश दृढ़ता से लागू होने चाहिए।

इल्तुतमिश की अपेक्षा बलवन के समय राजत्व का आदर्श उच्च कोटि का दिखाई देता है। उसने कईं नवीन परंपराओं को जोड़कर प्रशासन चलाया। राजत्व में एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ी गई कि उच्च रक्त व वंश के लोग ही प्रशासनिक पदों पर आ सकते थे। बलवन को इससे नैतिक रूप से सहायता प्राप्त हुई। क्योंकि मुस्लिम राज्य में अभी तक ऐसी परम्परा नहीं थी कि जाति या वंश देखा जाये। इससे निम्न वर्गीय लोग चाहे वे हिन्दुस्तानी हों या मुसलमान शासन से या सुल्तान से बहुत दूर खड़े दिखाई दिये।

न्यायिक व्यवस्था में, ऐसा नहीं कि कोई भेदभाव होता हो क्योंकि बलवन द्वारा अपने पुत्रों को दिये गये शासन व्यवस्था के निर्देशों में रियाया के प्रति उसके उत्तरदायित्व का चितंन परिलक्षित होता है। यह स्पष्ट है कि बलबन न्याय के समक्ष किसी अन्य बात को कोई महत्व नहीं देता था। जैसे कि जलाल खॉ को दिया गया दण्ड़। यही उसको राजत्व के उच्चतम आदर्श पर खड़ा करता है। बलवन ने राजत्व का स्वरूप निर्धारण करने के लिए कईं अन्य कार्य भी किये। जैसे– स्वयं को प्राचीन ईरानी राजवंश ‘‘अफरासियाज’’ से जोड़ना, ईरानी परंपराओं पायबोस(पैरों को चूमना) और सिजदा (दण्डवत् प्रणाम करना), ईरानी शासकों के नाम पर अपने पुत्र और पौत्रों के नाम रखना, चमचमाती नग्न तलवार वाले तलवारधारी अपनी निजी सुरक्षा में रखना। ये ऐसे अद्भुत प्रयोग थे जिनसे राजत्व का आदर्श उच्चकोटि का हो गया।

उसने सुल्तान के पद को मात्र रियाया (प्रजा) के लिए ही नहीं बल्कि निकटत्तम् सम्बधियों के लिये भी इतना अधिक कठिन बना दिया कि कोई भी व्यक्ति सुल्तान से आंख मिलाकर बात नहीं कर सकता था।

बलवन के बाद सत्ता में कईं उतार चढ़ाव देखने को मिलते हैं। जब तक की अलाउद्दीन खल्जी सुल्तान पद धारण नहीं करता। कुछ मायनों में जलाउद्दीन खिल्जी ने सुल्तान के पद की गरिमा को बनाये रखा पर उसी के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन (अली गुरशाप) से उसको चुनौती मिली तब राजत्व की गरिमा को भयंकर ठेस पहुंची। सम्पूर्ण सल्तनत काल में इस तरह के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जब सत्ता प्राप्ति के लिए अनेक हथकण्डे अपनाये गये।

जलालुद्दीन व अलाउद्दीन दोनों बलवन की सेवा में रहकर उसका कार्य व्यवहार देख चुके थे फिर भी उनके कार्यकाल में बलवन के राजत्व की झलक नहीं मिलती।

विशुद्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से अलीगुरशाप द्वारा जलालुद्दीन की हत्या करने का कृत्य जगन्य अपराध था। अतः शीघ्र ही उसने दिल्ली सहित सल्तनत की समस्त जनता को अपने लिये सुल्तान मानने को राजी कर लिया। अपनी राजसत्ता की स्वीकृति के लिए उसने इल्तुतमिश की भांति खलीफा की उपेक्षा भी नहीं थी। इसके लिये अलाउद्दनीन ने स्वयं को ‘‘यामिन–उल–खिलाफत नासिरी अमीर–उल–मुमनीन’’कह कर सम्बोधित किया। इससे वह खिलाफत की बेरूखी से बचा रहा। दिलचस्प यह है कि वह मात्र खिलाफत की परम्परा को जीवित रखना चाहता था। लेकिन उसने खलीफा के नायब के रूप में स्वयं को कभी घोषित नहीं किया।

अलाउद्दीन के राजत्व के आदर्श में इस्लामिक राज्य के साथ–साथ जनकल्याण का भाव भी दिखाई देता है। काजी मुगीसुद्दीन के साथ विचार–विमर्श में उसने स्पष्ट किया कि ‘‘ मैं नहीं जानता की कानून की दृष्टि में यह सब कुछ उचित है या अनुचित है। मैं तो वही कार्य करता हूॅ जो राज्य की भलाई अथवा विशेष अवसर के लिये उपर्युक्त समझता हूॅ ओर उसी को क्रियान्वयन कराने की आज्ञा देता हूॅ, अंतिम दिन मेरा क्या होगा यह मैं नहीं जानता।’’ उपर्युक्त वाक्य में उसके पूर्व के सुल्तानों से पृथक राजत्व का सिद्धांत दिखाई देता है। वह विशुद्ध रूप से शासन को धर्म से पृथक रखना चाहता था और उसमें वह सफल भी रहा।

उसके विचारों से ज्ञात होता है कि वह स्वयं को सामान्य मनुष्य से अधिक बुद्धिमान और पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था। और मानता था कि सुल्तान की इक्छा ही कानून हे। इस तरह के राजत्व के आदर्श की पूर्णतः अबुलफजल के लेखन में दिखाई देती है। वह मुल्ला–मौलवियों के हाथ की कटपुतली बनकर रहना नहीं चाहता था–राजत्व का यह स्वरूप अलाउद्दीन से पूर्व के सुल्तानों में दिखाई नहीं देता।

तुगलक काल में राजत्व का आदर्श खल्जियों जैसा नहीं रहा। हालांकि गयासुद्दीन तुगलक ने पूर्व की भांति कार्य करना चाहा पर वह सच्चा आदर्श स्थापित नहीं कर सका। उसका पुत्र मोहम्मद-बिन-तुगलक एक नये दृष्टिकोण के साथ शासन संभालता हैं। परन्तु इतिहासकारों ने उसे कई संज्ञाओं से उद्धृत किया और उसके राजत्व की आलोचना पर ज्यादा बल दिया।

यह सही है कि वह प्रारंभिक तुर्कों जैसा राजत्व स्थापित नहीं कर सका। फिर भी उसके समय जनकल्याण के लिए अत्यधिक कार्य हुए। उसकी बनाई हुई सभी योजनाऐं लगभग असफल रहीं परन्तु उसके समय शासन की नौकरी में प्रवेश के लिए कोई उच्च वर्गीय पैमाना नहीं था। अतः अब तुर्क और ताजिक के अतिरिक्त भारतीय और अफगानी मुसलमानों के साथ हिन्दु भी राजकीय कार्यों में प्रवेश पाने लगे। वह मानता था कि सरकार को जनता के अधिक निकट होना चाहिए। वह भी अलाउद्दीन की भांति जनकल्याण के लिए शरा (शरियत) के नियमों का उल्लंघन करता था। जिससे धर्मगुरूओं ने अलाउद्दीन की भांति उसे धर्मविरूद्ध घोषित किया।

फिरोज तुगलक ने राजत्व में धर्म का घालमेल कर उसे धार्मिक दृष्टिकोण प्रदान किया। वह प्रत्येक कार्य में शरा का सहारा लेता रहा जिससे उसके सपूंर्ण शासन काल में धर्म का बोलबाला रहा। साथ ही उसने ऐसे तत्वों को ज्यादा तहत्व दिया जिससे सामंतीकरण की प्रक्रिया को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

लोदीकाल में राजस्व का आदर्श एक नये रूप में सामने आता है। ये मूलतः अफगानी थे। अतः बहलोल लोदी ने अफगानी परंपरा उनुसार सभी सरदारों के साथ समान व्यवहार कर सुल्तान एवं राजस्व की गरिमा को भयानक ठेस पहुंचायी और सुल्तान अमीरों में सबसे बड़ा अमीर होकर रह गया। जबकि अफगानियों ने खल्जियों और तुग़लकों के अधीन कार्य किया था और वे सत्ता के व्यवस्थित तथा निरंकुश प्रयोगको जानते थे। परंतु अफगानी परंपराओं की तत्कालीन समय में आवश्यक नहीं थी क्योंकि अफगानी परंपरायें राजनीतिक विस्तार और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की ओर अधिक क्षुकती थीं।

बहलोल के कार्यों में यहविशिष्ट था कि वह महत्वपूर्ण विचार-विमर्श करते समय राजगद्दी छोड़ अमीरों के साथ कालीन पर नीचे बैठ जाता था। कई बार महत्वपूर्ण मुद्दों पर वह अपनी पगड़ी उतार कर भी उनके सामने रख देता था। इससे अमीर स्वयं को सुल्तान के समकक्ष समझने लगे और अव्यवस्था उत्पन्न होने लगी। इब्राहीम लोदी ने सुल्तान बनने के बाद अमीरों को कसना शुरू किया तो वे विद्रोह करने लगे। इससे राजस्व के आदर्श में गम्भीर खतरे उत्पन्न हुए और सल्तनत का मजबूत आधार कमजोर होने लगा।

कुछ सुल्तानों को छोड़कर (अलाउद्दीन खलजी एवं मोहम्मद-बिन-तुगलक) शेष सुल्तानों का प्रभाव मिला जुला रहा। वे शरियत के साथ-साथ प्रशासनिक कार्य करते थे और अधिकांश मौकों पर उलेमावर्ग के विरूद्ध नहीं जाते थे। इन अर्थों में सुल्तान भारतीय इस्लामिक जगत के सर्बेसर्वा बने रहे।

पाद–टिप्पणी एवं संदर्भ

१.इलियट एण्ड डाउसन–दि हिस्ट्र ऑफ इण्डिया एन टोल्ड बाय ऑन हिस्टॉरियन्स–दि मुहम्मडन पीरियड, भाग–२ ट्रेबरनियर एण्ड कम्पनी, लंदन, १८६६, पृ. ३०१
२.वहीपृ. ३२०
३.चन्द्र,सतीश– मध्यकालीन भारत (अनु. नवल किशोर)जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, नईदिल्ली,प्रथम भाग, १६६८ पृ. २८–२६
४.हबीब, मुहम्मद एवं के. ए. निजामी (संपा.)–दिल्ली सुल्तनत, मेकिमिलन इडिया लिमिटेड, पुर्नमुर्दण–१६६७ पृ.२४३
५. वही पृ. २३६–२३७
६.बलवन से पूर्व इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी क्योंकि तुर्की राज्य नव स्थापित था और राजपूतों से निरंतर चुनैतियॉ मिल रही थीं साथ ही प्रशासनिक कार्यो के लिए बड़ी संख्या में हिन्दू चाहिए थे। बलवन की सत्ता प्राप्ति तक बहुत सी मध्य एशियाई जातियॉ नौकरी व बेहतर जीवन की तलाश में भारत आ चुकी थीं जिससे उसे पर्याप्त मात्रा में मुसलमान मिल गये और उच्चवर्गीय पैमाना स्थापित करने का अवसर मिल गया।
७.हबीब, मुहम्मद एवं के. ए. निजामी (संपा.) दिल्ली सुल्तनत मेकिमिलन इडिया लिमिटेड.पुर्नमुर्दण–१६६७ पृ.२४३
८.हबीब, मुहम्मद एवं के. ए. निजामी (संपा.) दिल्ली सुल्तनत मेकिमिलन इडिया लिमिटेड.पुर्नमुर्दण–१६६७ पृ.२३८
६.इलियट एण्ड डाउसन, दि हिस्ट्र ऑफ इण्डिया एन टोल्ड बाय ऑन हिस्टॉरियन्स– दि मुहम्मडन पीरियड,भाग–३ ट्रेबरनियर एण्ड कम्पनी, लंदन, १८७१, पृ.१००–१०२
१०.जलालुदद्दीन खलजी एवं अलाउदद्दीन खलजी ने बलवन के समय में ही प्रगति की थी और उसके कार्यो से भलीभॉति परिचित थे। फिर भी जब उन्हे गद्दीनसीनी का अवसर प्राप्त हुआ, तब दोनों ही, राजत्व के मामले में बलवन की परछाई भी नहीं थे।

११.श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल–दिल्ली सल्तनत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड़ कम्पनी, आगरा, १९८१ पृ. १५१

१२.रिजवी, सैयद अतहर अब्बास– खलजी कालीन भारत, हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटि, अलीगढ़, १९५५ पृ. ७३

१३.श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल–दिल्ली सल्तनत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड़ कम्पनी, आगरा, १९८१ पृ. १५०

१४.अकबरनामा शेख अबुलफजल, (अनु.) एच.बेबरिज, बिब्लियोथेका इंड़िका, एशियटिक सोसायटी ऑफ बंगाल कलकत्ता, १९०७

१५.हबीब, मुहम्मद एवं के. ए. निजामी (संपा.)–दिल्ली सुल्तनत मेकिमिलन इडिया लिमिटेड.पुर्नमुर्दण–१९६७ पृ. ४२३

१६.वही पृ ४२६–४२७

१७.वही पृ ५०८–५१०

१८.वही पृ ५८६ श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल, पृ. २३२

१९.वही पृ ५८६ श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल, पृ. २३२